स्वस्थवृत्त योग एवं निसर्गोपचार प्रश्नोत्तरी

प्रश्न :– वैयक्तिक स्वास्थ्य का वर्णन एवं स्वस्थवृत्त का प्रयोजन लिखो?

उत्तर :– ''शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्'' के अनुसार सर्वप्रथम हमारे शरीर स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि समस्त कार्य अर्थात धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का साधन स्वस्थ शरीर ही है। इसके बाद हमें सामाजिक एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए ताकि वातावरण एवं उसमें रहने वाले प्राणी स्वस्थ होंगे तो हमें भी स्वस्थ दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो सकेगी।

प्रश्न :– स्वस्थवृत्त का प्रयोजन, स्वस्थ, स्वास्थ्य एवं स्वस्थवृत्त की परिभाषा लिखो?

उत्तर :– स्वस्थवृत्त का प्रयोजन :– निरोग समाज का निर्माण ही स्वस्थवृत्त का मुख्य प्रयोजन है। हमारे आहार–विहार आचार–विचार एवं व्यवहार में शुद्धता रखना तथा पर्यावरण प्रदूषण रोकना एवं स्वच्छ समाज का निर्माण तथा शरीर को प्रभावित करने वाली ऋतुऐं एवं तत्सम्बन्धी व्यवहार का नियन्त्रण करना ही स्वस्थवृत्त का विशेष प्रयोजन है।

स्वस्थ परिभाषा :– शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से जो व्यक्ति चिन्ता एवं विकार रहित हो उसे स्वस्थ कहते हैं।

स्वास्थ्य :– शरीर में दोष, धातु एवं मलों के साथ मन, आत्मा एवं इन्द्रियों के सम रहने तथा आहार विहार, आचार–विचार एवं व्यवहार विकार रहित होने पर समुचित स्वास्थ्य कहा जाता है।

स्वस्थवृत :– जिस शास्त्र में स्वास्थ्य सम्बन्धी शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक समस्त नियमों का विवरण हो उस शास्त्र को स्वस्थवृत्त कहते हैं।

प्रश्न : स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण लिखो?

उत्तर :– नरोहिताहारविहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपर क्षमावान आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः। च०शा०

जो व्यक्ति प्रतिदिन हितकर आहार विहार का सेवन करता है विचार पूर्वक समस्त कार्य करता है, काम क्रोधादि विषयों में आसक्त नहीं हो, सभी प्राणियों में सम दृष्टि रखता हो, सहनशील, सत्यवादी, आप्तों की सेवा करने वाला हो वह सदा रोग रहित रहता है अर्थात् स्वस्थ रहता है।

समदोषः समाग्निश्चसमधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सुश्रुत

यद्यपि सभी संहिताओ में स्वस्थ के लक्षण दिये हैं तथापि सुश्रुत की इस परिभाषा को सभी दृष्टि से स्वीकार किया गया है–जिस व्यक्ति के शारीरिक एवं मानस दोष सम हों, शरीर की अग्नियों का पाचन कर्म सम्यक् हो, शारीरिक धातुओं की निर्माण एवं पोषण क्रिया सम हो तथा शरीर के मलादि (अनिष्ट पदार्थों) की निष्कासन, प्रक्रिया समुचित हो, साथ ही व्यक्ति की इन्द्रियाँ, आत्मा एवं मन भी प्रसन्न हो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहते हैं।

प्रश्न :– विश्व स्वास्थ्य संगठन का स्वास्थ्य परिभाषा लिखें?

उत्तर :– विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) ने भी आयुर्वेद की स्वास्थ्य परिभाषा को सर्वात्मना स्वीकार किया है इन्होंने शारीरिक मानसिक प्रसन्नता के साथ सामाजिक सौख्य को जोड़कर स्वस्थ की परिभाषा की है। Health is a state of complete physical, mental and social well being, not merely the absence of disease or infirmity (W.H.O.)

प्रश्न :- दिनचर्या का परिचय दें?

उत्तर :- दिनचर्या :- प्रात: सूर्योदय से पूर्व उठकर रात्रि भोजन से पूर्व तक के दैनिक कार्यों को नियमित रूप से करना ही दैनिक चर्या या दिनचर्या है।

प्रात: कर्म :- प्रात: प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व **ब्रह्म मुहूर्त** (सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व) में निद्रा त्याग करें। मुख प्रक्षालन कर उष:पान (यथावश्यक जलपान) करें। यथा समय मल **मूत्र का त्याग** करें। मल त्याग वेग शीघ्रता पूर्वक नहीं करें। घर से बाहर जंगल में जाने वालों को, पशु स्थान, चैत्य स्थान, श्मशान, हलजुती भूमि, राख आदि के ढेर, सांप आदि के बिल के पास मल त्याग नहीं करना चाहिए। इसके बाद मलायन करें। जल से शुद्धि करें। मल त्याग के पश्चात् शुद्ध जल से हाथ धोकर कवल गण्डूष करें। शरद ऋतु एवं ग्रीष्म में ऋतु अनुरूप उष्ण व शीतल जल का प्रयोग करें।

दातून :- कटु, तिक्त, कषाय रस वाले वृक्षों की टहनियों से दातून करें अथवा ब्रश, मंञ्जन, जिह्वा निलेखन करें। इसके लिए उचित सुलभ धातु की या दातुन फाड़कर उससे धीरे धीरे जिह्वा को साफ करे। नीम की दातून श्रेष्ठ बताई गई है। शास्त्र में अनेक वनस्पतियों एवं विधियों का वर्णन है। अजीर्ण श्वास, कास, शूल आदि रोगों से पीड़ित व्यक्ति दातून नहीं करें। जिन्हें **दातून** या मञ्जन निषेध हो या नहीं कर सकते हों वे घृत तैलादि का **गण्डूष** धारण करे। प्रतिदिन **अभ्यंग** (तैल मालिश) मनुष्य को अंग सोष्ठव एवं दीर्घायु प्रदान करता है, सन्धि बन्धनों की गति बनाये रखता है। त्वचा में **अभ्यंग** से वातज रोग नहीं होते। शरीर की थकान दूर होती है, ज्वर, अजीर्ण, अग्निमांद्य में अभ्यंग नहीं करें। **शिर में तैल** मालिश करें, नाक में तैल लगावें, कान में तैल की बूंदे डालने से एवं **पादाभ्यंग** करने से प्रतिश्याय, हनु रोग तथा पांव के जोड़ दृढ़ रहते हैं। आंखों में प्रतिदिन **अञ्जन** करें। यथाशक्ति प्रतिदिन **व्यायाम** करें। काख में पसीना आने लगे तब अपनी शक्ति का ज्ञान करके व्यायाम छोड़ देना चाहिहए, यही अनुकूल है। अत्यधिक व्यायाम हानिकर होता है। रक्तपित्त, कृशकाय, श्वास, कास, भूखे एवं प्यासे को व्यायाम नहीं करना चाहिए। प्रतिदिन यथा शक्ति बाग, पार्क आदि में घूमना चाहिए। **क्षौर कर्म** समय पर करें, स्नान से पूर्व **उबटन** करें। इससे शरीर एवं मुख की कान्ति बढ़ती है, मल दूर होता है। प्रतिदिन **स्नान** करें। शरद ऋतु में कवोष्ण (Luke Warm) तथा ग्रीष्म में शीतल जल प्रयोग करें। शिर पर उष्ण जल नहीं डालना चाहिए। साबुन आदि से शरीर को साफ करें। तैल लगाकर स्नान के बाद **केश संवारे** एवं चन्दनादि अनुलेपन करें, **स्वच्छ वस्त्र** धारण करें यथावश्यक आंखों में **अंजन** करना चाहिए। **नस्य** करने से प्रतिश्याय एवं शिर के रोग, कास, श्वास नहीं होते हैं। यथा समय ऋतु के अनुकूल एवं शास्त्र में बताई विधि के अनुसार **भोजन** करना चाहिए। भोजन के बाद **ताम्बूल** प्रयोग एवं यथाविधि **धूमपान** करें। सुगन्धित माला रत्नाभूषण आदि धारण करें।

प्रात:काल के नित्य कर्म के पश्चात् अर्थोपार्जन के लिए व्यापार या सरकारी अथवा अर्धसरकारी सेवा करें। प्राचीन विधि के अनुसार शिर पर पगड़ी, दण्ड़, छाता, जूता रत्न आदि धारण का भी विधान बताया है। इस प्रकार बताई गई प्रतिदिन की दिनचर्या का अष्टांगहृदय सूत्र स्थान में विस्तार से वर्णन किया है तथाा चरक में भी पूर्ण विवरण विस्तार से दिया है।

प्रश्न :- संध्याचर्या का वर्णन करें?

उत्तर :- संध्याचर्या :- रात्रि एवं दिन के मिलने से पूर्व का समय संध्या कहलाता है। इस समय भी विशेष चर्या का पालन करना चाहिए।

एतानिपञ्च कर्माणिसंध्यायां वर्जयेत बुध:।
आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि। भा०प्र०पू० 4/271

ज्ञानवान को चाहिए कि संध्याकाल में भोजन, मैथुन, निद्रा, अध्ययन तथा मार्ग चलना ये पांच कर्म नहीं करने चाहिए।

इसका कारण बताते हुए लिखा है कि सांयकाल में भोजन करने से रोग उत्पन्न होते हैं मैथुन से गर्भ विकार होता है, निद्रा से निर्धनता आती है, पठन पाठन से आयु नाश होती है तथा मार्ग चलने से भय उत्पन्न होता है।

प्रश्न :- रात्रिचर्या का वर्णन करें?

उत्तर :- रात्रिचर्या :- चन्द्रमा की **चांदनी**, शीतल, काम देव सम्बन्धी आनन्ददायक तथा तृषा, पित्त एवं दाह को हरने वाली है। **अन्धकार**, सदा भयदायक, मोहकर्ता दिशाओं में भ्रम करने वाला, पित्त तथा कफ को हरने वाला, काम शक्ति को बढ़ाने वाला एवं मोहकारक होता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में दिन की अपेक्षा कुछ कम भोजन करना चाहिए। तथा गुरु अर्थात् देर से

पचने वाला भोजन नहीं करें। हल्का एवं सुपाच्य भोजन करें। ओस चांदनी से हीन गुण वाली होती है तथा वात कफकारक होती है। (भाव प्रकाश)

विवाहित व्यक्ति को कामेच्छा उत्पन्न होने पर मैथुन नहीं करने से प्रमेह, मेद की वृद्धि तथा शरीर में शिथिलता आती है। अत: बाला सेवन से शरीर बल बढ़ता है। भावप्रकाश में लिखा है :-

सद्योमांस नवं चान्नं बालास्त्री क्षीरभोजनम्।
घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यप्राण कराणि षट्।।

ताजा मांस, नया अन्न, बाला स्त्री सेवन, दूध का भोजन, घी का सेवन तथा उष्णजल से स्नान ये छ: वस्तु तत्काल बल देने वाली होती है। नियमानुसार स्त्री संग करने से आयु बढ़ती है। अत: ऋतु के अनुसार शास्त्र में बताये नियमों के अनुसार स्त्री संग करने से लाभ होता है।

सुश्रुत के अनुसार बुद्धिमान व्यक्ति को प्रत्येक ऋतु में तीन तीन दिन के बाद स्त्री संभोग करें किन्तु ग्रीष्म में पक्ष में एक बार सहयोग करें। दुष्ट स्त्री, कामेच्छा रहित, गर्भिणी, मलिन, गोत्रवाली, उपदंश, विकृति योनि में मैथुन नहीं करें। समय पर सोने से धातु एवं दोष पुष्ट होते हैं अग्नि एवं बल बढ़ता है।

प्रश्न :- भावप्रकाश के अनुसार निद्रा का वर्णन करें?

उत्तर :- समय पर निद्रा का सेवन करना, धातु साम्य, तन्द्राहर, पुष्टि, वर्ण, बल, उत्साह एवं जठराग्नि दीप्त करता है। **निद्रा तु सेविताकाले धातु साम्यमतन्द्रिताम्। पुष्टिं वर्ण बलोत्साहं वह्निदीप्ति करोति हि। भा०प्र०**

सुख पूर्वक निद्रा के लिए भाव प्रकाश लिखते हैं :-

यो लेढी शयन समये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम्।
स तु लज्जाकरवातप्रसर विरोधात्सुखं स्वपिति।। भा०पू०ख०/4/310

सोने के समय जो व्यक्ति बिजौरे के पत्तो के चूर्ण को मधु मिलाकर खाता है उसकी अधोवायु का वेग रुक जाता है। वायु शमन होने से सुखपूर्वक सोता है।

प्रश्न :- ऋतुचर्या का वर्णन करते हुए किसी एक ऋतु का परिचय दें?

उत्तर :- हमारे जीवन पर ऋतुओं का विशेष प्रभाव पड़ता है क्योंकि तीनों दोषों का संचय प्रकोप एवं शमन इन्हीं ऋतुओं में होता है अत: हमारा आहार विहार ऋतु के अनुकूल होना चाहिए जिससे दोषों की स्थिति सम ही बनी रहे।

भारत में प्रमुख 6 ऋतुएँ होती हैं जिन्हें दो अयन में विभाजित किया है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन। 1. शिशिर, 2. वसन्त एवं 3. ग्रीष्म ये **उत्तरायण** की ऋतुएं है। इस काल को आग्नेय या आदानकाल भी कहते हैं। इन ऋतुओं में सूर्य की तेज किरणें पदार्थों एवं शरीर का स्नेह अंश का शोषण करती है। ये ऋतुएँ क्रमश: माघ से आषाढ तक दो-दो महिनों में होती है।

दक्षिणायन की तीन ऋतु हैं यह सोम्य या विसर्ग काल कहलाता है। इसमें चन्द्रमा बलवान होता है अत: ये शरीर पोषक ऋतुएँ है जो 1. वर्षा, 2. शरद, 3. हेमन्त हैं।

हेमन्तऋतुचर्या :- यह ऋतु विसर्ग काल की प्रथम ऋतु हैं इसका काल, मार्गशीर्ष एवं पोष बताया गया है। लगभग नवम्बर, दिसम्बर के समय होती है। इससे सूर्य कोहरे से ढका रहता है। शीतल वायु चलती है अत: तुषार एवं सीधी वायु सेवन वर्जित है। इस ऋतु में ऊनी वस्त्र, गर्म स्थान में रहना, धूप एवं अग्नि सेवन करना चाहिए। बाहर ठण्ड के कारण जठराग्नि प्रबल होने से भूख अधिक लगती हैं अत: पौष्टिक एवं अधिक मात्रा में लिया भोजन शीघ्र पच जाता है। उचित भोजन नहीं लेने से, पूर्ण पोषण नहीं मिलने के कारण शरीर कमजोर होने का भय रहता है। मांसाहारियों को विलेशय एवं प्रसह जीवों का मांस खाना चाहिए। उचित मद्यपान भी लाभकर होता है। सत्तू, वात सेवन, हल्का भोजन वर्जित है।

शिशिरऋतुचर्या :- प्राय: माघ एवं फाल्गुन में शिशिर काल होता है। इस ऋतु में भी हेमन्त का ही आहार-विहार प्रयोग

करना चाहिए। यह आदान काल की प्रथम ऋतु कही गई है। इस काल में रूक्ष, शीत हवा चलती है, कभी कभी वर्षा भी होती है। आदान काल प्रारम्भ होने से इसमें रूक्षता बढ़ जाती है। इस ऋतु में कटु, तिक्त, कषाय रस वाले, वात वर्धक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

वसन्तऋतुचर्या :- यह ऋतु प्राय: चैत्र वैशाख के समय होती है। हेमन्त का संचित कफ वसन्त के सूर्य की किरणों से पिघलकर जठराग्नि को मन्द करता है। अत: इसे निकालने के लिए ऋतु शोधन रूप वमन कराना चाहिए। गुरु अम्ल, स्निग्ध आहार एवं दिन में सोना वर्जित है। व्यायाम, उबटन, कवलग्रह, गुनगुने जल का सेवन, जौ, गेहूं आदि (पुराने) अन्न का भोजन, मांसाहारी व्यक्ति हरिण, खरगोश आदि का मांस सेवन करें। इस ऋतु में बल मध्यम रहता है।

ग्रीष्मऋतुचर्या :- यह जेठ एवं आषाढ की ऋतु है। इसमें आदान काल प्रबल होता है। चारों तरफ उष्णता होती है। जगत का जलीयांश अधिकाधिक सूख जाता है अत: मधुर, शीतल पदार्थों का सेवन, स्निग्ध, अन्नपान ग्रहण करें, मन्थ, सत्तू आदि का प्रयोग, जांगल मांस रस, दूध, घी, चावल सेवन करें। मद्य का सेवन कम करना चाहिए, पानी अधिक पीना चाहिए। व्यायाम एवं उष्ण, तीक्ष्ण, लवण अम्ल पदार्थों का सेवन नहीं करें, शीतल जगह रहें, चांदनी का सेवन करें तथा शीतल माला या मोती धारण करें।

वर्षाऋतुचर्या :- यह श्रावण भाद्रप्रद मासों की ऋतु है इसमें मनुष्य शरीर ग्रीष्म के कारण अति दुर्बल होते हैं। अग्नि भी दुर्बल होती है। वर्षा में भूमि से वाष्प निकलने के कारण, जल के अम्ल विपाक से वातकुपित हो जाता है। उबटन, स्नान, सुगन्धित पदार्थों का सेवन, पुष्प धारण, नमी एवं फौहार रहित स्थान पर सोना चाहिए। भोजन में पुराना अन्न लेना चाहिए। पानी उबला हुआ प्रयोग करें। स्निग्ध, मधुर, अम्ल, लवण, उष्ण तथा वात नाशक भोजन लेवें। दिन में सोना, सत्तू प्रयोग, घूमना, नदियों का पानी, व्यायाम एवं मैथुन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शरदऋतुचर्या :- यह आश्विन कार्तिक माह में आने वाली ऋतु है। इस ऋतु में वर्षा में संचित पित्त कुपित होता है। इस ऋतु में मधुर, लघु, शीतल, कुछ तिक्त रस युक्त पित्त शामक अन्नपान का यथामात्रा सेवन करें। पित्त निकालने के लिए विरेचन कराना चाहिए। चावल, जौ, गेहूं का सेवन करें। तिक्त घृत पान एवं रक्तमोक्षण भी करना चाहिए। इस ऋतु में धूप, तैल, ओस-जलीय मांस, क्षार, आनूप मांस सेवन एवं दिन में सोना वर्जित है।

प्रश्न :- ऋतु सन्धि काल स्वरूप लिखो?

उत्तर :- ऋतु सन्धि काल :- एक ऋतु से दूसरी ऋतु के मध्य का काल ऋतुसन्धि कहलाता है। अत: आने वाली ऋतु के प्रारम्भ के सात दिन तथा बीत रही ऋतु के अन्ति सात दिनों में वर्तमान ऋतु का आहार-विहार धीरे-धीरे छोड़ते जाना चाहिए एवं आने वाली ऋतु का आहार विहार का पालन प्रारम्भ कर देना चाहिए अन्यथाा एकदम नियमों को छोड़ने एवं पालन करने वाले रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है।

प्रश्न :- तीन उपस्तमभ कौन से है लिखियें?

उत्तर :- यह शरीर त्रिदण्ड रूप मन, आत्मा एवं शरीर पर आश्रित है। इन्हीं तीन को सबल रखने के लिए तीन उपस्तम्भों का वर्णन किया गया है जिन्हे **आहार, निद्रा** एवं **ब्रह्मचर्य** कहा है।

त्रय उपस्तम्भ इति आहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। (च०सू०11)

यह शरीर त्रिदण्ड पर आधारित होने से इनका पोषण वर्धन एवं रक्षण आवश्यक है अत: आहार से शरीर का पोषण, वर्धन होता है निद्रा से मन का तथा आत्मा का ब्रह्मचर्य अर्थात् सद्व्रत पालन से पोषण होता है।

आहार :- शरीर स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य हेतु सात्विक, ऋतु के अनुरूप दोषादि की संचयादि अवस्था का ध्यान रखते हुए, परिमित एवं समय पर भोजन करना चाहिए। ऋतु विपरीत, दोष विपरीत एवं प्रकृति विपरीत भोजन नहीं लेवें, पूर्व भोजन के ठीक प्रकार से पचने के बाद भोजन करें, अध्यशन नहीं करें एवं भोजन में बताये गये षड्रस युक्त तथा आधुनिक दृष्टि से बताये गये आहार घटक युक्त ही शरीर का पोषण करने वाला भोजन होता है।

प्रश्न :– षड् ऋतुओं का आहार विहार एवं चर्या लिखें?

उत्तर : हेमन्तचर्या– यह विसर्गकाल की ऋतु है, मार्गशीर्ष एवं पौष में आती है। इसमें व्यक्तियों का बल श्रेष्ठ होता है जठराग्नि तीव्र होती है, गुरु द्रव्यों का पाचन ठीक होता है इस ऋतु में औदक, विलेशय एवं आनूपदेश के जीवों का मांस आहार योग्य है। दूध, इक्षु, वसा, तैल, नया चावल तथा उष्ण जल सेवन आयुवर्धक होता है। गर्भगृहों में रहना चाहिए, ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि मोटे वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। अगरु आदि उष्ण द्रव्यों का लेप करें। थोड़े आहार वायु का सेवन तथा सत्तू सेवन वर्जित है।

शिशिरचर्या :– यह आदान काल की ऋतु है, माघ एवं फाल्गुन में आती है। इस ऋतु में हेमन्त के समान ही चर्या का पूर्ण पालन करना चाहिए। यह आदान काल की ऋतु है अत: मेघ, मारुत, वर्षा जन्य शीतलता बढ़ जाती हैं इसमें वात रहित (सीधी हवा वाले) उष्ण गृह में निवास करें। इसमें कटु, तिक्त, कषााय, वातल, एवं शीतल अन्नपान का सेवन करें इसमें भी मनुष्यों का बल उत्तम होता है।

वसन्तचर्या :– यह आदान काल की ऋतु है, चैत्र एवं वैशाख में होती है प्राणियों का बल मध्यम होता है। जठराग्नि मन्द रहती है हेमन्त में संचित कफ सूर्य की तीव्र रश्मिययों द्वारा प्रकुपित होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है। इसमें शोधनार्थ वमनादि पंचकर्म करें।

ग्रीष्म ऋतु :– यह उत्तरायण की ऋतु है इससे अति तीक्ष्ण सूर्य किरणों से सूर्य पृथ्वी के स्नेहांश को शोख लेता है अत: इसे आदान काल कहते है इसमें श्लेष्मा घटता है वायु बढ़ती है। इस ऋतु में नमक कटु, अम्लरस, व्यायाम एव धूप का त्याग करना चाहिए। मधुर अन्न का विशेष प्रयोग करना चाहिए। मद्य नहीं पीना चाहिए। रसाला राग, पाक, षाडव मिट्टी के नये पात्र में रखकर प्रयोग करें। शर्करा मिले भैंस का दूध प्रयोग करें मध्याह्न में ठण्डे स्थान पर रहे। रात्रि में चन्द्रमा की चांदनी में छत पर विश्राम करें।

वर्षा ऋतुचर्या :– यह दक्षिणायन या आदान काल की ऋतु है। इसमें चन्द्रमा बलवान होता है सूर्य का तेज कम होता है। बादल, वृष्टि एवं वायु से भूमि का ताप कम होता है। इस काल में अम्ल लवण, मधुर रस, स्निग्ध तथा बलववान रस उत्पन्न होते है। इसमें प्राणियों का बल न्यून होता है। इस काल में अग्नि मन्द होती है। अत: इस काल में साधारण विधि का अर्थात् अग्नि प्रदीप्त करने वाले पदार्थ सेवन करें।

इस काल में वमन विरेचन द्वारा शोधन करके आस्थापन वस्ति, पुराने अन्न, स्नेह शुण्ठी, आदि से संस्कारित जांगल मांस, मूंग यूष का सेवन, पुरातन अरिष्ठ, स्नेहयुक्त शुष्क भोजन करें। नदी जल, पैदल चलना, दिन में सोना वर्जित है।

शरद ऋतु :– इस काल में वर्षा में संचित पित्त का प्रकोप होता है। इसलिए तिक्त घृत, विरेचन तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिए। तिक्त, मधुर, कषाय रस वाला आहार, मूंग, शाली, आंवला, परवल, मधु एवं जागल मांस का सेवन करें। हंसोदक का पान करें। रात्रि में चन्दन, खस, कर्पूर, मोती आदि शीतल द्रव्यों, श्वेत वस्त्र एवं चन्द्रमा की चांदनी का सेवन करें।

इस ऋतु में ओस, यवक्षार, भरपेट खाना, तेल, वसा, धूप, दिन में सोना वर्जित है।

प्रश्न :– रसायन का अभिप्राय क्या है, कितने प्रकार का है तथा वर्तमान में रसायन का महत्व प्रतिपादन करो?

उत्तर:– रसायन का अर्थ :–

1. स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम्।

जो औषधि द्रव्य स्वस्थ व्यक्ति में ऊर्जस्कर (ओज को) बढ़ाने वाले होते है वे प्राय: वृष्य एवं रसायन होते हैं।

2. लाभोपायो हि शस्तानां रसादिनां रसायनम्।

जिन औषध एवं उपायों द्वारा शरीर को उत्तम रस रक्तादि धातुओं की प्राप्ति होती है उन्हें रसायन कहते हैं।

रसायन के प्रकार :- रसायन सेवन के दो प्रकार बताये गये हैं :- 1. कुटिप्रावेशिक रसायन, 2. वातातपिक।

कुटि रूप किसी विशेष विधि एवं नियमों का पालन करते हुए रसायन सेवन की विधि को कुटि प्रावेशिक कहते हैं तथा सामान्य रूप से दैनिक क्रिया करते हुए सेवन किये जाने वाली रसायन विधि को वातातपिक कहा जाता है।

रसायन का वर्तमान में प्रयोग का प्रयोजन :- वर्तमान में चरक में वर्णित देश, काल, वायु एवं जल प्रतिदिन बढ़ते जा रहे प्रदूषण से विकृत हो रहे है। प्रदूषण का विशेष विस्तार हो रहा है। मनुष्यों के आहार विहार में भी परिवर्तन आ जाने से लोगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता दिन पर दिन कम होती जा रही है। विश्व में अनेक प्रकार के गैसीय एवं रासायनिक अनुसंधान हो रहे है जिनके विकार स्वरूप अनेक प्रकार के विश्व व्यापी रोग प्रतिवर्ष फैल जाते है। कभी स्वाईन फ्लू कभी बर्ड फ्लू, चिकन गुनिया, डेंगू तथा अभी कोरोना से पूरा विश्व प्रभावित है ऐसे समय में रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली औषध का सेवन जैसे चरक में बताये च्यवनप्राश, बाह्य रसायन, ऐन्द्र रसायन, आमलक रसायन, अश्वगन्धा रसायन, पिप्पली रसायन आदि का व्यक्ति की प्रकृति के अबनुरूप प्रयोग की महती आवश्यकता है। शुद्ध आहार विहार के साथ पूर्वकाल में लोग प्रतिवर्ष रसायनों का सेवन करके अपनी ऊर्जा को बढ़ाते रहते थे। किन्तु वर्तमान में लोग आयुर्वेद का विशेष उपयोग नहीं करके अन्य योग लेते हैं जो अस्थायी होते हैं। आयुर्वेद के अश्वगन्धा, शतावरी, मूसली, आमलकी, हरड़, गिलोय आदि विशेष रसायन द्रव्य है इनके बने हुए योग व्यक्ति में रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। अत: वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति को रसायन की विशेष आवश्यकता है वर्तमान में सहज एवं सात्म्य बल प्राय: बहुत कम प्राप्त होता है अत: युक्तिकृत बल का उपयोग किया जा रहा है। माताएं 6 माह तक अपना दूध बालकों को पिलाकर बड़ा करे तो स्वाभाविक बल प्राप्त होता है कालज बल व्यक्ति स्वयं की समझ से काल एवं आयु के अनुरूप आहार-विहार से प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न:- ऋतुचर्या का महत्व लिखो?

उत्तर :- ऋतुचर्या का महत्व :- हमारे शरीर के मुख्य घटक तीन दोष है। इनके सम रहने से सातो धातु एवं मल क्रिया भी समुचित रहती है। हमारा आहार दोषों की दृष्टि से ऋतु के अनुसार प्रयोग करने दोषों की संचय प्रकोप एवं शमन अवस्था ठीक रहती है। ऋतु के वातावरण के अनुसार भोजन के उपयोग से दोषों का संचय होता है-ग्रीष्म में उत्पन्न होने वाले एवं प्रयोग किये जाने वाले पदार्थों से वात का संचय होता है। अग्रिम ऋतु में (वर्षा में) वात का प्रकोप होता है तथाा शरद में शमन होता है। पित्त का वर्षा ऋतु मे संचय, शरद में प्रकोप तथा हेमन्त में शमन होता है। कफ का हेमन्त में संचय, वसन्त में प्रकोप एवं ग्रीष्म में शमन होता है अत: इनके ज्ञान के लिए भी ऋतुवर्धक आवश्यक है।

मुख्य रूप से शरद, गर्मी एवं वर्षा तीन ऋतुओं के ज्ञान से ही इनके समयों में हम अपना आहार विहार ग्रहण करते हैं।

ऋतु से ही रसों का सम्बन्ध है जिनका हम प्रतिदिन आहार में उपयोग करते हैं-वायु एवं आकाश महाभूतों के प्रभाव से वसन्त में कषायरस की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार ग्रीष्म में अग्नि एवं वायु से कटु रस, अग्नि एवं पृथ्वी महाभूत के प्रभाव से वर्षा में अम्ल रस, जल एवं अग्नि महाभूत के प्रभाव से शरद में लवण रस तथा पृथ्वी एवं जल महाभूत के प्रभाव से हेमन्त में मधुर रस की उत्पत्ति होती है।

सुश्रुत ने दिन के प्रथम भाग को वसन्त, मध्य दिन को ग्रीष्म एवं अपराह्न को प्रावृट् कहा है। रात्रि के प्रथम भाग को वर्षा, अर्धरात्रि को शरद एवं अन्तिम रात्रि के काल को हेमन्त कहा है।

दोषों का जब संचय होता है तब उनका ऋतु के अनुसार संशोधन कर देते हैं ताकि अग्रिम ऋतु में उसका प्रकोप विशेष नहीं हो।

यदि दोषों का शमन करने एवं रसायन प्राप्ति करनी हो तो ऋतु के अनुसार हमे ऋतु हरीतकी का सेवन करना चाहिए।

सिन्धूत्थशर्करा शुण्ठिकणामधुगुडै: क्रमात् वर्षादिष्वभंयाप्राश्या रसायनगुणैविण।

सैन्ध के साथ वर्षा में, शर्करा के साथ शरद में, सौंठ के साथ हेमन्त में, पिप्पली के साथ शिशिर में तथा मधु के साथ वसन्त में प्रयोग करना चाहिए। (भा०प्र०)

इस प्रकार ऋतुओं का हमारे दैनिक जीवन में विशेष महत्व देखा जाता है।

प्रश्न :- यमदंष्ट्रा किसे कहते हैं।

उत्तरः- कातिकस्यादिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च।
यम दंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारः सजीवति।

कार्तिक के अन्तिम आठ दिन तथा मार्गशीर्ष (अगहन) के प्रारम्भ के आठ दिन ये 16 दिन यमदंष्ट्रा कहलाते है। इन दिनों में अल्पाहार करने वाला ही जीवित रहता है अर्थात् स्वस्थ जीवन यापन करता है। इन दिनों में प्रायः पित्त का प्रकोप एवं कफ का संचय होता है। अतः गुरु आहार रोग कारक होता है। अतः शरद आदि में रोग अधिक होने की सम्भावना रहती है। इन दिनों में हितकर, परिमित एवं ऋतु के अनुसार भोजन करना चाहिए। ऐसे मनुष्यों को यमदंष्ट्रा का डर नहीं रहता। क्यों ऐसे व्यक्ति वैद्यों के शत्रु होते हैं।

वैद्यानां शारदीमाता पिता च कुसुमाकरः।
यमदंष्ट्रा श्वसा प्रोक्ता हितभुक्मितभूक्रिपु।

प्रश्न :- ऋतुवीपर्यय क्या हैं?

उत्तर :- ऋतु व्यापद को ऋतु विपर्यय कहते हैं। **ऋतु व्यापद वसन्तादिस्थाने शरदादि घर्म प्रवृतिः।** जब ऋतुओं का अयोग, मिथ्या योग अतियोग हो तब ऋतु विपर्य कहा जाता है। जैसे ग्रीष्म काल में शीत एवं शीतकाल में ग्रीष्म एवं शीतकाल में वर्षा होने को ऋतु विपर्यय कहते हैं। विकृत ऋतुओं के प्रभाव से उत्पन्न व्याधियां व्यापन्न ऋतुकृत कहलाती है। संक्षेप में प्रत्येक ऋतु का अपने प्राकृत समय के विपरीत होना ही ऋतु विपर्यय है।

प्रश्न :- ऋतु एवं अग्नि बल का वर्णन करें?

उत्तर :- ऋतु प्रभाव के कारण अग्नि भी प्रत्येक ऋतु में सम नहीं रहती।

हेमन्त बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनल।

बलवान पुरुष में शीत के कारण अवरूद्ध होने से उष्मा बाहर नहीं निकलने से जठराग्नि प्रबल होती है अतः मधुराम्ल पदार्थों का पाचन कर लेती है। **वसन्त** में कफ पिघल कर अग्नि को नष्ट करता है। **ग्रीष्म** में सूर्य की प्रखर किरणों के कारण संसार का जलीयांश कम होता है। अतः अग्नि दुर्बल होने के कारण गुरु आहार का पाचन नहीं कर पाती। **वर्षा** में आदान काल होने से मन्दाग्नि दूषित वातादि दोषों से और भी मन्द हो जाती है। **चरकानुसार आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति।** शरद में वातावरण सम रहता है अतः अग्नि भी सम रहती है।

प्रश्न :- ऋतु हरीतकी का वर्णन करों?

उत्तर :- सिन्धूत्थ शर्कराशुण्ठी कणामधुगुडैःक्रमात्।
वर्षादिष्वभयाप्राश्या रसायनगुणैषिणा।

प्रत्येक ऋतु का प्रभाव सम रखने के लिए एवं दोषों की स्थिति ऋतु के अनुकूल हो इसके लिए भाव प्रकाश में ऋतु हरीतकी का प्रयोग बताया है। यह रसायन के गुणों से युक्त होती है एवं दोषों के अनुकूल होती हैं। अतः इसका प्रयोग सममात्रा में सैन्धव, शर्करा, सौंठ, पिप्पली, मधु एवं गुड़ के साथ प्रत्येक ऋतु में क्रमशः करना चाहिए अर्थात् वर्षा में सैन्धव नमक के साथ, शदर में शक्कर के साथ, हेमन्त में सौंठ के साथ शिशिर में पीपल के साथ तथा वसन्त में मधु के साथ एवं ग्रीष्म में गुड़ के साथ प्रयोग करना चाहिए।

प्रश्न :- दोष शोधन योग्य ऋतुचर्या का वर्णन करें?

उत्तर :- संचय के पश्चात् प्रकोपकारक अगली ऋतु में लंघन, पिपासा निग्रह, मदु उपचार एवं ऋतुचर्या में बताये आहार विहार के द्वारा दोषों को सम अवस्था में लाना चाहिए। यदि प्रकोप की अवस्था विशेष हो अथवा दोषों के अत्यधिक संचय के लक्षण हो तो वमनादि द्वारा संशोधन विधि से सम करना चाहिए।

हरेद्वसन्तेश्लेष्माणां पित्तं शरदिनिर्हरेत्।
वर्षाषुशमयेद् वायु प्राग्विकारसमुच्छ्रयात्। सु०सू०6

प्रकुपित हुए प्रबल दोष किसी रोग को उत्पन्न करें उससे पूर्व ही वसन्त ऋतु मुं श्लेष्मा की वमन द्वारा शुद्धि करनी चाहिए। शरद् में विरेचन द्वारा पित्त की तथा वर्षा ऋतु में (या प्रावृट् में) बस्तियों द्वारा वायु का शोधन करना चाहिए।

प्रश्न :- ऋतु के अनुसार दोषों का संचय प्रकोप शमन लिखें?

उत्तर :- संचय- ऋतु के अनुसार रसों की वृद्धि होने से उनके द्वारा ग्रहण दोषों का संचय होता है। अपने अपने स्थान में दोषों का बढ़ना संचय कहलाता है-ग्रीष्म में वात का संचय होता है, वर्षा में पित्त का संचय होता है हेमन्त में कफ का संचय होता है।

प्रकोप- जब बढ़े हुए दोषों को ऋतु शोधन विधि से निर्हरण नहीं किया जाय तो अपने स्थान में अधिक मात्रा में बढे हुए दोष उन्मार्ग गामी हो जाते हैं।

वर्षा या प्रावृट् में वात का प्रकोप होता है शरद में पित्त का प्रकोप होता है वसन्त में कफ का प्रकोप होता है। अधिक प्रकोप रोगकारक भी होता है।

प्रशम (शमन) - संचय एवं प्रकोप की अवस्था में इन दोषों का प्रतिकार नहीं करने पर यदि ये सामान्य अवस्था में हो तो ऋतु के अनुसार स्वयं शान्त हो जाते हैं। यदि ये रोग उत्पन्न करने की स्थिति में हो तो औषध द्वारा इनका शमन किया जाता है। वात का शरद में स्वाभाविक शमन होता है। वसन्त में या हेमन्त में पित्त का तथा ग्रीष्म या प्रावृट में कफ का स्वाभाविक शमन होता है। वात अपने स्थान में स्थित होती है। पित्त सम हो जाता है कफ को शान्ति होती है।

	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म	वर्षा	हेमन्त
प्रकोप	वर्षा	शरद	वसन्त
शमन	शरद	वसन्त	ग्रीष्म

प्रश्न :- ऋतु सन्धिकाल विधि लिखो?

उत्तर :- ऋतु सन्धि :- दो ऋतुओं के संयुक्त काल अर्थात् वर्तमान ऋतु का अन्तिम सप्ताह तथा आने वाली ऋतु का प्रथम सप्ताह ये चौदह दिन ऋतु सन्धिकाल कहलाते हैं। इसका उपयोग यह है कि आने वाली ऋतु का आहर विहार क्रमशः ग्रहण करना चाहिए एवं वर्तमान ऋतु का आहार विहार धीरे धीरे छोड़ते रहना चाहिए। क्योंकि एक साथ छोड़ने एवं ग्रहण करने से भी असात्म्यजन्य रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

विधि :- प्रक्षेपापचये ताभ्यां क्रमः पादांशिको भवेत्। अर्थात् प्रथम दिन पूर्व का आहार 3 भाग अग्रिम ऋतु का एक भाग दूसरे दिन पहला आहार, तीसरे दिन पहले दिन की भांति, चौथे दिन पूर्व आहार के दो पाद तथा अग्रिम का के दो पाद, पांचवे छठे दिन भी प्रथम दिन की तररह, सातवें दिन चौथे दिन की तरह, आठवें दिन पूर्व आहार का एक भाग आगे के आहार के तीन भाग ले , नोवें, दशवें एवं ग्यारहवें दिन चौथे दिन का आहार, बारहवें दिन आठवें दिन की भांति, तैरहवें दिन अग्रिम ऋतु का पूर्ण आहार तथा चौदहवें दिन आठवें दिन का आहार लें। आगे अग्रिम ऋतु का पूर्ण आहार लें।

प्रश्न :- आदानकाल एवं विसर्गकाल स्वरूप वर्णन करें?

उत्तर :- सम्पूर्ण वर्ष को स्वभाव एवं प्रभाव की दृष्टि से भागों में विभक्त किया गया है आदानकाल एवं विसर्गकाल।

आदानकाल- वर्ष में 6 ऋतुओं का वर्णन किया गया है अतः शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं के काल को आदान काल कहा गया है। इसी का दूसरा नाम उत्तरायण है। सूर्य कि किरणें इन तीन ऋतुओं में क्रमशः प्रखर होती हाती है

अत: इसे आग्नेय काल भी कहा जाता है, इस काल में सूर्य प्रतिदिन मनुष्यों के बल का ग्रहण करता है। संसार के जलीयांश को सोखता है अत: ग्रहण करने से इसे आदानकाल कहते हैं।

विसर्ग काल :- .....ऋतवों दक्षिणायनम्।
वर्षादयो विसर्गश्च यद्वलं विसृजात्ययम्।। वाग्भट

वर्षा, शरद, हेमन्त इन तीन ऋतुओं में सूर्य दक्षिणायन होता है। अत: सूर्य प्रभाव कम एवं चन्द्रमा बलवान होने से इन तीनों ऋतुओं में मनुष्यों का बल बढ़ाता है।

प्रश्न :- आदान विसर्ग काल का अन्तर स्पष्ट करो?

उत्तर :- **तुलनात्मक तालिका**

आदान काल	**विसर्गकाल**
1. शिशिर, वसन्त ग्रीष्म ऋतु।	1. वर्षा, शरद, हेमन्त ऋतु।
2. सूर्य उत्तरायण होता है।	2. सूर्य दक्षिणायन होता है।
3. यह आग्नेय काल है।	3. यह सोम्य काल है।
4. वायु अति रूक्ष होती है।	4. वायु रूक्ष नहीं होती है।
5. चन्द्रमा का बलक्षीण होता है।	5. चन्द्रमा पूर्ण बलवान होता है।
6. सूर्य का बाल पूर्ण होता है।	6. सूर्य का बल क्षीण होता है।
7. सूर्य एवं वायु जगत के जलीयांश को सोखते हैं।	7. चन्द्रमा संसार को तृप्त करता है।
8. इसमें तिक्त, कटु एवं कषाय रसों की वृद्धि होती है।	8. इसमें मधुर, अम्ल एवं लवण रसों की वृद्धि होती है।
9. मनुष्यों में स्वाभाविक दुर्बलता आती है।	9. मुनष्यों में बल की प्राप्ति होती है।

प्रश्न :- ऋतु वर्णन में मतान्तर का कारण लिखो?

उत्तर :-मासैद्विसंख्यैर्माघाद्यै: क्रमात् षड् ऋतव: स्मृता।

शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रष्मों वर्षा शरद्भिमा:।। वाग्भट
शिशिर वसन्त ग्रीष्म एवं वर्षा शरद हेमन्त-चरक
शिशिर वसन्त ग्रीष्म एवं वर्षा शरद हेमन्त-सुश्रुत
ग्रीष्म, प्रावृट वर्षा, शरद हेमन्त वसन्त-शां०सं०

चरक- सुश्रुतादि ग्रन्थों में शोधन कर्म में प्राकृत का उल्लेख किया है।

चरक ने ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त क्रमश: इन 6 ऋतुओं का वर्णन किया है। सुश्रुत ने हेमन्त का उल्लेख नहीं किया उसके स्थान पर प्रावृट का उल्लेख किया है। अत: चरक के अनुयायियों ने शिशिर का सुश्रुत के अनुयायियों ने प्रावृट् का उल्लेख किया है। यद्यपि कुछ स्थानों पर दोनों ने इन ऋतुओं का उल्लेख किया है।

इस विभेद का यह कारण है कि सुश्रुत ने ऋतुओं का वर्णन दोषानुसार किया है। क्योंकि आयुर्वेद ग्रन्थों की दृष्टि से तीनों दोषों में वायु को प्रधान माना गया है। मेष तथा वृष राशि के उष्ण सूर्य काल में वायु संचित होती है अत: वैशाख एवं जेष्ठ महिनों को ग्रीष्म माना है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं का ज्ञान करना चाहिए। वर्षा के चार मास मानने से प्रावृट एवं वर्षा इन दो ऋतुओं की कल्पना की गई है। हेमन्त एवं शिशिर के गुण दोष समान होने से शिशिर को छोड़ दिया गया है।

कुछ विद्वानों के अनुसार जिस जिस प्रदेश में वर्षा अधिक होती है वहां वर्षा के चार माह मानते हुए कम वर्षा काल को प्रावृट एवं विशेष वर्षा काल को वर्षा ऋतु कहा है तथा जहां वर्षा कम एव शीत अधिक होता है वहां शीत के चार माह मानते

हुए कम शीत वाले काल को हेमन्त एवं अधिक शीतकाल को शिशिर कहा है। इसी दृष्टि से चरक, सुश्रुत के ऋतु विभाग में भिन्नता होते हुए भी दोनों ने अनेक स्थानों पर दोनों द्वारा मानी गई ऋतुओं का उल्लेख किया है।

प्रश्न :- आहार की निरुक्ति, स्वरूप एवं प्रमुखता लिखो?

उत्तर :- आहार निरुक्तिः- 1. आहार्यते गलादधोनियत इत्याहारः।

जिस द्रव्य को मुख से गले के नीचे निगला जाता है वह आहार कहलाता है।

2. अह्रियन्तेशरीरधातवः अनेन इत्ययाहारः।

3. गल विवरादयः संयोगानुकूल व्यापारः आहारः।

गले के नीचे द्रव्यों को ले जाने का नाम आहार है। जिसके द्वारा शरीर धातुओं की पुष्टि होती है वह आहार है।

आहार स्वरूप :- आहारत्वमाहारस्यैक विधम् जिस प्रकार द्रव्य के 9 भेद होते हुए भी द्रव्य एक ही है उसी प्रकार आहार द्रव्यों के असंख्य रूप होते हुए भी आहार सामान्य से एक ही प्रकार का होता है। पांचभौतिक शरीर को पांचभौतिक द्रव्यों द्वारा पोषण करने का साधन आहार हैं। वह आहार भक्ष्य, भोज्य पेह्य, लेह्य, चर्व्य चौस्य रूप 6 प्रकार का होता है तथा आहार स्थावर, जंगम, तरल, ठोस, हितकर, अहितकर, रस, गुण, विपाक एवं प्रभाव भेद से अनेक प्रकार का है।

प्रश्न :- आहार द्रव्य वर्गीकरण लिखो?

उत्तर :- आहार द्रव्यों का वर्गीकरण अनेक रूप में किया गया है प्रमुख रूप से **योनि** भेद से स्थावर एवं जंगम। **प्रभाव** भेद से हितकर एवं अहितकर, **रस** भेद से 6 प्रकार, गुण की दृष्टि से 20 प्रकार का तथा उपयोग भेद से 6 प्रकार, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चर्व्य, चोष्य, आधुनिक दृष्टि से कार्बनिक, अकार्बनिक दो भेद किये है।

1. योनि भेद से-स्थावर जंगम।

2. प्रभाव भेद से- हितकर, अहितकर।

3. उपयोग भेद से- 6 प्रकार, भक्ष्य, भोज्य पेय, लेह्य, चर्व्य, चोष्य।

4. रस भेद से- 6 प्रकार मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय।

5. गुण भेद से- 20 प्रकार गुरु, लघु आदि।

गुरु मन्द हिम स्निग्धश्लक्ष्णससान्द्र मृदु स्थिराः।
गुणाःससूक्ष्मविषदाविषंति सविपर्ययः।।

6. आधुनिक दृष्ट्या- कार्बनिक, अकार्बनिक।

7. वानस्पति अंग भेद से- कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल।

चरक में आहार द्रव्यों के 12 वर्ग बताये हैं-शूकधान्य, शमी धान्य, मांस, शाक, फल, हरित वर्ग, मद्यवर्ग, जल वर्ग, गोरस (दूध, दही, मक्खन, छाछ), इक्षु विकार वर्ग (गुड़, खांड, मिश्री, राब), कृतान्न वर्ग (रोटी, पेया विलेपी), आहारोपयोगी वर्ग (तैल, लवण, त्रिकटु, पंचकोल, वसा, मज्जा, निषिद्ध पदार्थ, परिहार आदि)।

प्रश्न :- सामान्य आहार विधि लिखें?

उत्तर :- आहार विधि :- हमारा प्रतिदिन का भोजन हितकर हो, परिमित हो तथा दोष, देश, प्रकृति एवं ऋतु, काल के अनुरूप होना चाहिए।

इस प्रकार के आहार का उपयोग करने के लिए चरक लिखते हैं-भोजन उष्ण हो (ताजा हो, बासी न हो) स्निग्ध एवं उचित मात्रा में हो, पूर्व भोजन पच जाने पर भोजन करें, वीर्यादि में विरुद्ध (काल, मात्रा, देश, दोष, पात्र, संस्कार आदि) न हो, मनोनुकूल

स्थान पर हो, इच्छित सामग्री युक्त होने पर, न अति शीघ्र एवं न बहुत धीरे-धीरे, मौन रहकर, न हंसते हुए, आत्मा के अनुरूप समीक्षा करके प्रतिदिन षड्रस युक्त भोजन करना चाहिए।

प्रश्न :-आहार विधि विशेष आयतन का वर्णन करें?

उत्तर :- विशेष आयतन :- यद्यपि इनका वर्णन अष्टांग में पढ़ चुके हैं तथा चरक में पढ़ेगें तथापि यहाँ स्मृति के लिए नामोंल्लेख कर रहे हैं-1. प्रकृति, 2. करण, 3. संयोग, 4. राशि, 5. देश, 6. काल, 7. उपयोग संस्था तथा 8. उपभोक्ता। ये आठ आहार के विशेष आयतन कहे गये हैं।

प्रकृति :- द्रव्य एवं औषध के स्वभाव को प्रकृति कहते हैं अत: दोष, देश एवं स्वयं की प्रकृति के अनुकूल आहार स्वास्थ्यकर होता है यथा-मूंग स्वभाव से लघु एवं उड़द गुरु है।

करण :- द्रव्यों में संस्कार करना करण कहलाता है। जल, अग्नि, शुद्धता, मन्थन, वासना, भावना आदि से द्रव्यों में गुणों का आधान किया जाता है।

संयोग :- दो या अधिक द्रव्यों को मिलाना संयोग कहलाता है। संयोग से विशेष कार्य सम्पादन होता है।

राशि :- आहार में सभी द्रव्यों को मिलाकर प्रयोग करना **सर्वग्रह राशि** है तथा एक-एक द्रव्य का प्रमाण में ग्रहण करना **परिग्रह राशि** कहलाता है।

देश :- द्रव्यों की उत्पत्ति वाले देश (स्थान) के ज्ञान से शरीर के लिए सात्म्य का ज्ञान होता है।

काल :- यह नित्यग एवं आवस्थिक दो प्रकार का है। नित्यग ऋतु के अनुरूप आहार लेना एवं रोग की अवस्था के अनुरूप आहार लेना आवस्थिक है।

उपयोग संस्था :- यह भोजन करने का नियम है अर्थात् पूर्व किये भोजन के पचने पर ही भोजन लेना चाहिए।

उपभोक्ता :- आहार द्रव्यों का उपयोग करने वाला उपभोक्ता होता है। जो शरीर सात्म्य के अनुरूप भोजन करता है।

इस प्रकार इन विशेष आयतनों का ध्यान रख कर भोजन करने से शुभफल देते हैं अत: स्वास्थ्य चाहने वालों को इनका ध्यान रखकर आहार लेना चाहिए।

प्रश्न :- आहार विधि विधान का वर्णन करें?

उत्तर :- आहार विधि- यथासमय, परिमित एवं हितकर भोजन करना चाहिए। **हिताशीस्यात् मिताशिस्यात् कामभोजी जितेन्द्रिय:।** प्रतिदिन षड्रस युक्त आहार लेना चाहिए, मधुर रस अधिक हो, मनोबल के अनुकूल हो, स्नान के पश्चात्, उचित स्थान पर बैठकर, एकान्त स्थान पर, धीरे-धीरे भोजन करें। भोजन से पूर्व देवार्चन, अपने आश्रितों को भोजन कराकर भोजन की निन्दा किये बिना भोजन करें।

बासी, बाल, तृण आदि मिला, पुन: गर्म किया आदि आहार का सेवन नहीं करें।

गुरु पदार्थ, मिठाई आदि (गुरु पदार्थ) भोजन के पूर्व में, लघु रूक्ष, कटु, तीक्ष्ण भोजन के अन्त में तथा मध्य में अम्ल लवण रस वाले पदार्थ लें। प्रमाण की दृष्टि से 2 भाग उदर का अन्न से एक भाग, तरल से तथा चौथा भाग वायु की गति के लिए खाली रखना चाहिए।

द्वादशाशन प्रविचारणा :- भोजन के 12 प्रकार के विभागों को सुश्रुत में प्रविचारणा कहा गया है।

द्वादशप्रविचारणा वक्ष्याम:। तत्र शीतोष्ण स्निग्ध रूक्ष द्रव शुष्कैककालिकाद्विकालिकौषधयुक्तमात्राहीनदोषप्रशमन वृत्यर्था:। सु०उ० 64/56

शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एककालिक, द्विकालिक, औषध युक्त, मात्राहीन, प्रशमन कारक तथा वृत्ति प्रयोजक। ये बारह प्रविचारणा हैं।

प्रकृति, देश, दोष एवं आवश्यकता के अनुरूप उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एक समय, दोनों समय, यदि रुग्ण हो तो औषध के साथ, कम या अधिक मात्रा में, रोग एवं दोष विकार को शमन करने वाला आहार ग्रहण करना तथा इन बारह प्रकारों के अलावा जिन व्यक्तियों में वातादि दोष तथा धातुएं सम हो उनका स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ उचित मात्रा में आहार ग्रहण करें यही प्रविचारणा है।

प्रश्न :- आहार का दुष्परिणाम एवं तज्जन्य व्याधियों का उल्लेख करें?

उत्तर :- यद्यपि मात्रा में यथा समय रुचि के अनुरूप किया गया भोजन स्वास्थ्यकर होता है किन्तु मात्रा से अधिक किया गया भोजन दोषों को शीघ्र कुपित करता है इसका परिणाम यह होता है कि अलसक, विसूचिका, दण्डालसक, अजीर्ण, विलम्बिका, रसशेषाजीर्ण आदि रोग हो जाते हैं।

आहार का मुख या मल मार्ग से बाहर नहीं आकर आमाशय में निष्क्रिय रूप पड़ा रहता है अत: इसे **अलसक** कहते हैं।

कुपित हुए वातादि दोष शरीर में सूई चूभोने की तरह वेदना उत्पन्न करते हैं अत: इसे **विसूचिका** कहते हैं।

दूषित दोष जब आम से मिलकर स्रोतों को रोक लेते हैं तब वह अन्न शरीर को दण्डे की भांति स्तब्ध कर देते हैं तब इसे **दण्डालसक** कहते हैं।

अध्यशन एवं अजीर्ण में भोजन करने से वह आहार तीव्र पीड़ाकारक होने से शीघ्र प्राणनाशक होता है यही **आमविष** है।

कफजन्य अजीर्ण को आमाजीर्ण कहा है **आमाजीर्ण च कफादामं (वाग्भट)**- वायु के कारण **विष्टब्धाजीर्ण** होता है। पित्त के कारण **विदग्धा** जीर्ण होता है।

इन सभी प्रकार के अजीर्ण में लंघन कराना चाहिए। विष्टब्धाजीर्ण में स्वेदन तथा विदग्धा जीर्ण में वमन कराना चाहिए। विलम्बिका की आमाजीर्ण की तरह चिकित्सा करनी चाहिए। अलसक के अपक्व आहार में वमन कराना चाहिए। इसके लिए वच, मैनफल, सैन्धव को गर्म पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए।

प्रश्न :- पथ्यापथ्य का वर्णन करो?

उत्तर :- पथ्य:- जो आहार देश, काल, प्रकृति एवं ऋतु के अनुकूल हो वही व्यक्ति के लिए पथ्याहार है। सदा पथ्य बताये गये पदार्थों में-शालिधान्य, गेहूं, जौ, साठी, जीवन्ती, कच्ची मूली, बथुआ, हरड़, आंवला, मुन्नका, पटोल, मूंग, शर्करा, घृत, दूध, मधु, अनार, हंसोदक (जल), सैन्धव सर्वदा सेवनीय हैं। रात्रि में त्रिफला, मधु एवं घी पथ्य हैं। उष्ण जल तथा जो आहार स्वास्थ्य वर्धन करे तथा रोग को नष्ट करे वह पथ्य है।

अपथ्य :- मात्रा, काल, पात्र, संस्कार, संयोग, प्रकृति एक काल के विरूद्ध हो वह सर्वदा अपथ्य होता है। कुछ स्वभाव से अपथ्य एवं कुछ काल, पात्र, देश, दोष, प्रकृति आदि की दृष्टि से अपथ्य होते हैं। प्रकृति के विरूद्ध आहार भी अपथ्य होते हैं।

पथ्येसतिगदातस्य किं औषधनिषेवणै:।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किंमौषधनिषेवणै:।

प्रश्न :- आहार पाचन विधि लिखो?

उत्तर :- आहार पाचन विधि :- ग्रहण किया भोजन आमाशय से ग्रहणी में आता है। यहाँ परिमर्दन एवं अपकर्षण के प्रभाव से स्थूलान्त्र के प्रथम भाग में 4 से साढ़े चार घण्टे बाद आरोही स्थूलान्त्र को पार कर याकृत कोण पर तथा अनुप्रस्थ स्थूलान्त्र को पार कर नौ घंटे बाद प्लेहिक कोण तथा अवरोही स्थूलान्त्र के विभिन्न भागों में पहुंचता है। लगभग 18 घण्टे बाद सिगमोइड फ्लेक्श में पहुंचता है। रात में यह गति मन्द होती है। स्थूलान्त्र में द्रव्य की गति एक घण्टे में एक फुट से कम होती है। 5 फुट स्थूलान्त्र को पार करने में लगभग साढ़े तेरह घंटे लगते हैं। लोक भाषा में 8 घण्टे पाचन का समय माना गया है।

प्रश्न :- आहार के दुष्परिणाम लिखें?

उत्तर :- आहार के दुष्परिणाम एवं रोग :- इन दोनों अर्थात् पथ्यापथ्य का अतिमात्रा में प्रयोग किये जाने से अनेक रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है। आहार दुष्परिणाम से व्यक्ति स्थूल एवं कृश ही हो सकते हैं।

अतिबृंहण जन्य व्याधियां :- अति स्थूलता से अपची, प्रमेह, ज्वर, भगन्दर, कास, सन्यास, मूत्रकृच्छ्र, आमरोग, अजीर्ण कुष्ठ आदि रोग हो जाते हैं।

अतिकृश या लंघन से :- भ्रम, कास, तृषा, अरुचि, निद्रा, दृष्टि, शुक्र, श्रोत्र, ओज भूख एवं स्वरक्षय होता है। बस्ति, हृदय, मूर्धा, जंघा, ऊरु, पार्श्व पीड़ा, प्रलाप ग्लानी अस्थि टूटने जैसी पीड़ा एवं मूत्र आदि का अवरोध हो जाता है।

प्रश्न :- सन्तर्पण जन्य एवं अपतर्पण जन्य व्याधियों का वर्णन करो?

उत्तर :- वाग्भट ने दो प्रकार के उपक्रमों का वर्णन किया है। 1. सन्तर्पण, 2. अपतर्पण। सन्तर्पण वृंहण को तथा अपतर्पण लंघन को कहा गया है। आम दोषज एवं कफज तथा पित्त रोगों में लंघन कराने से अपतर्पण होता है।

इनमें मेद, आमदोष, ज्वर, उरुस्तम्भ, कुष्ठ, विसर्प, विद्रधी, प्लीहा रोग, शिरोरोग, कण्ठ, अक्षि रोग एवं अतिस्थौल का लंघन से अपतर्पण होता है। स्नेहन से वात विकार एवं वात कफज विकार दूर होते हैं।

क्षतक्षीण, कृश, वृद्ध, दुर्बल, अत्यधिक स्त्री सेवी, मद्यपायी, शोष, ग्रहणी आदि रोग सन्तर्पण से दूर होते हैं। कृश को सन्तर्पण की अधिक मात्रा देने एवं स्थूल को अति लंघन कराने से भी अनेक रोग हो जाते हैं अत: युक्ति युक्त लंघन एवं बृंहण कराना चाहिये।

प्रश्न :- आहार प्रमाण एवं पोषण तथा आवश्यक तत्वों के अभाव जन्य रोगों का उल्लेख करें?

उत्तर :- सामान्यतया आहार की मात्रा जठराग्नि बल पर निर्भर करती है। आहार का गुरु लघु आदि व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है।

शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है- आमाशय के दो भाग को अन्न से पूर्ण करना चाहिए। तीसरे भाग को पेय पदार्थों से भरना चाहिए वायु आदि के संचार के लिए चौथा भाग खाली रखना चाहिए। यह प्रमाण-मन्दाग्नि, मन्द बल, मन्द आरोग्य, कोमल प्रकृति के व्यक्तियों (राजा, धनीमानी लोग) एवं सुखी जीवन व्यतीत करने वालों के लिए है। दूसरे मेहनत करने वालों के लिए प्रकृति के अनुरूप मात्रा लेनी चाहिए।

आवश्यक तत्वों के अभाव जन्य रोग

आहार तत्व क्षयवृद्धि	पाचन विकृति
1. Proteins, Fats and Carbohydrates की क्षय या वृद्धि से	Digestive disorder
2. Proteins वृद्धि	Dyspesia, Albuminuria
3. अत्यधिक Starchy और Fatty भोजन	Corpulence, Dyspesia, Diarrhoea (अतिसार)
4. Protein की कमी बच्चों में	Nutrional oedema, Kwashiorkor
5. Iron की कमी	Anemia (पाण्डु)
6. Iodine की कमी पानी में होने से	Goitre (गलगण्ड)
7. Vitamine A की कमी	Xerosis, Xerophthalmia, Dry skin Arrest of development, Night blindness, cataract and Branch pneumonia.
8. Vitamin B1 की कमी	Slow growth of children, Neuritis, Beri-Beri.

9. Vitamin B2 की कमी	Angular stomatitis, Erosion of Tongue, Occular manifestations
10. Vitamin C की कमी	Scurvy
11. Vitamin D की कमी	Rickets in children, Osteomalacia, Dental Caries.
12. Vitamin E की कमी	Sterility, Free radical injury.
13. Nicotinic acid की कमी	Pellagra
14. पानी की कमी	Disturbances of circulation and heat regulating mechanism.

प्रश्न :– षड़रसयुक्त आहार का महत्व बताइये?

उत्तर :– आयुर्वेद में षड्रस युक्त भोजन तथा पांचभौतिक गुण युक्त आहार का वर्णन पौषक तत्वों की दृष्टि से किया गया है। आधुनिक दृष्टि से विटामिन, प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, स्नेह, खनिज लवण एवं जल भोजन के विशेष अवयव बताये गये हैं। इनसे शरीर का सुचारू रूप से पोषण होता रहता है।

षड्रसयुक्त भोजन का महत्व :– रस की उत्पत्ति पञ्चमहाभूतों से होती हैं। विभिन्न महाभूतों के संयोग से विभिन्न रसों की उत्पत्ति होती है। आहार की पांच भौतिकता का यही अर्थ है कि भोजन सर्व रस युक्त होना चाहिए। अपने अपने दैनिक कार्य सम्पादन करते हुए दोष, धातु एवं मलों की षड्रस युक्त आहार से क्षतिपूर्ति होती रहती है। सर्व रस का प्रमाण प्रकृति, वय, दोष, देश, काल आदि की दृष्टि से ग्रहण किया जाता है। सर्व रसमय आहार का नित्य सेवन सर्वोतम बल बढ़ाने वाला है। एक रस का अभ्यास व्यक्ति को दुर्बल बना देता है। 2-3 या 4 रसों का अभ्याय मध्यम है। नित्य समप्रमाण में षड् रसों का प्रयोग करते समय प्रकृति एवं ऋतु का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि दोषों के संचय, प्रकोप का ध्यान रखकर षड़रसों में कुछ का कम एवं कुछ का अधिक प्रयोग किया जाता है। जैसे वर्षा में वात के अत्यधिक प्रकोप से बचने के लिए कटु, तिक्त, कषाय रसों का कम तथा मधुर, अम्ल रसों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करना चाहिए अतः आहार में षड् रसयुक्त भोजन का महत्व है।

प्रश्न : आदर्श भोजन एवं पोषण मान का वर्णन करो?

उत्तर :– आदर्श भोजन तथा उसका उचित परिणाम :– जिस भोजन में आहार के लिए बताये गये सभी तत्व एवं सभी रस हों, जो भोजन समय पर लिया जाय, मात्रा में लिया जाय एवं ऋतु के अनुसार तथा शरीर के लिए उचित मात्रा में लिया जाये वह भोजन सुखद परिणाम वाला होता है। अर्थात् भोजन के समस्त तत्वों वाला, यथासमय, यथा मात्रा लिया भोजन शरीर पोषण, धातु वर्धन एवं बल प्रदान करता है। इसके लिए दूध, फल, सब्जी आदि कितना लेना चाहिए इसका तालिकाओं में वर्णन किया गया है। बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष एवं गर्भिणी के लिए श्रम करने वालों के लिए भोजन की कितनी कैलोरी आवश्यक है यह स्वास्थ्य विभाग द्वारा निर्धारित किया गया है जिनका चार्ट में आगे वर्णन किया गया है।

आहार से पोषण :– शरीर बल, आयु प्रकृति एवं प्रत्येक हेतु के अनुसार लिया गया आहार शरीर की धातु, दोष एवं अवयवों का पोषण करता हैं इसे संतुलित भोजन भी कहा जाता है। आहार का अवस्था पाक एवं निष्ठापाक (सारभाग) भी समुचित रूप से निर्मित होने पर धातु पोषण क्रम नियमित होता है जैसा कि धातु पोषक तालिका में दिया गया है।

देशानुरूप पोषण की मान परीक्षा :– आयुर्वेद में तीन प्रकार के देशों का वर्णन किया है-जांगल, आनूप एवं साधारण। इनमें रहने वाले व्यक्तियों के शारीरिक दोष एवं प्रकृति की स्थिति के अनुरूप प्रत्येक देश में पोषण की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। जिस स्थान पर जो वस्तु उत्पन्न होती है वह उस देश के निवासियों के लिए यथावश्यक मात्रा में प्राप्त हो जाती है। अन्य देश वालों के लिए उनके देश की आहार पोषण मात्रा वहाँ की उपज के अनुकूल होती हैं, अतः प्रत्येक देश के अनुसार आहार का मान भिन्न-भिन्न होता है, क्योंकि जलवायु के अनुसार आहार सात्म्य होता है, उसी के अनुरूप उसका मान निर्धारित होता है अतः प्रत्येक देश के अनुसार मात्रा के मान निर्धारण करें। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, दक्षिण के कुछ प्रान्तों में चावल आवश्यक आहार है जो सात्म्य है तथा उत्तर भारत में गेहू, बाजरा आदि सात्म्य है। इसी दृष्टि से आहार का मान निर्धारण होना चाहिए।

प्रश्नः- समशन, अध्यशन एवं विषमाशन क्या है?

उत्तरः- समशन- प्रतिदिन के भोजन में पथ्य एवं अपथ्य को मिलाकर खाना समशन कहलाता है। ओक सात्म्य होने पर भी यह हानिकर होता है जैसे खीर खाते समय दही का रायता भी खाना समशन है।

अध्यशन- जब पूर्व में खाया हुआ अन्न पचा न हो उस समय पुनः भोजन करना अध्यशन कहलाता है। जैसे घर से भोजन करके गये हैं बाहर उत्सव आदि में भोजन करना या इन्कार करने पर भी जोर देकर भोजन कराने पर इन्कार न करते हुए भोजन करना अध्यशन होता है।

विषमाशन- बिना भोजन के समय बहुत या कम भोजन करना विषमाशन कहलाता है।

ये तीनों ही भयानक रोग कारक या मृत्युकारक हैं।

त्रिण्यप्येतानि मृत्युंका घोरान् व्याधीन् सृजन्ति हि। वाग्भट सू०8

प्रश्न :- विरुद्धाहार का वर्णन करें?

उत्तरः- चरक में 18 प्रकार के विरुद्ध आहार का वर्णन किया है। आहार कहीं संयोग से, कहीं पात्र से, कहीं मात्रा से, कहीं काल से, कहीं सात्म्य से विरुद्ध होता है।

1. **देश विरुद्ध**- मरुभूमि में रूख एवं तीक्ष्ण आहार तथा आनूप देश में स्निग्ध एवं शीतल आहार देश विरुद्ध है।

2. **काल विरुद्ध**- शीतकाल में शीतल एवं रूक्ष आहार तथा ग्रीष्म में कटु एवं उष्ण आहार काल विरुद्ध है।

3. **अग्नि विरुद्ध**- चारों प्रकार की अग्नि के अनुकूल भोजन न मिलना अग्नि विरुद्ध है।

4. **मात्रा विरुद्ध**- मधु एवं घी सम मात्रा में प्रयोग करना मात्रा विरुद्ध है।

5. **सात्म्य विरुद्ध**- कटु एवं उष्ण आहार सात्म्य वाले व्यक्ति के लिए मधुर एवं शीतवीर्य आहार सात्म्य विरुद्ध है।

6. **दोष विरुद्ध**- वातपित्त एवं कफ इन तीनों दोषों के समान गुण वाले एवं अभ्यास विरुद्ध आहार औषध एवं कर्म का सर्वदा सेवन करना दोष विरुद्ध होता है।

7. **संस्कार विरुद्ध**- एरण्ड की लकड़ी में भुना हुआ मोर का मांस विष तुल्य होने से इसे संस्कार विरुद्ध कहते हैं।

8. **वीर्य विरुद्ध**- शीतवीर्य वाले द्रव्यों को उष्ण वीर्य वाले द्रव्यों के साथ मिला कर खाना वीर्य विरुद्ध है।

9. **कोष्ठ विरुद्ध**- क्रुर कोष्ठ वाले व्यक्ति के लिए कम मात्रा में मन्दवीर्य वाला तथा मल का भेदन नहीं करने वाला कोष्ठ हो उस व्यक्ति को मात्रा में गुरु, (या द्रव्य गुरु) मल लाने वाला अन्न अधिक मात्रा में देना कोष्ठ विरुद्ध है।

10. **अवस्था विरुद्ध**- श्रम, मैथुन व्यायाम में लगे हुए व्यक्ति द्वारा वातवर्धक आहार का सेवन करना, तथाश्रम हीन, आलसी, अधिक सोने वाले व्यक्ति को कफवर्धक आहार लेना अवस्था विरुद्ध कहलाता है।

11. **क्रम विरुद्ध**- बिना समय बिना भूख लगे, बिना मल त्याग किये, अथवा अधिक भूख लगने पर भोजन करना क्रमविरुद्ध होता है।

12. **परिहार विरुद्ध**- सूअर आदि के मांस भक्षण के बाद उष्ण वस्तुओं का सेवन परिहार विरुद्ध है।

13. **उपचार विरुद्ध**- घी पीने के बाद शीतल आहार एवं जल पीना उपचार विरुद्ध होता है।

14. **पाक विरुद्ध**- अधपके चावल खाना, दूषित जल एवं विकृत लकड़ी से पाक करना, जले हुए अन्न का सेवन करना पाक विरुद्ध होता है।

15. **संयोग विरुद्ध**- अम्ल का दूध के साथ सेवन, मछली एवं दूध सेवन संयोग विरुद्ध है।

16. हृदय विरुद्ध– मन के अनुकूल न हो वह भोजन हृदय विरुद्ध कहलाता है।

17. सम्पद् विरुद्ध– उचित रस सहित एवं अधिक रस युक्त या प्रारम्भिक रस वाले द्रव्य का प्रयोग सम्पद् विरुद्ध है।

18. विधि विरुद्ध– एकान्त में भोजन न करना विधि विरुद्ध है।

प्रश्न :– निद्रा, निरुक्ति, उत्पत्ति एवं निद्रा के ग्रन्थानुसार प्रकार लिखें?

उत्तर :– 1. निरुक्ति–निन्द+रक+टाप् न लोप से निद्रा शब्द बना है। 2. अभया प्रत्यया लम्बना वृतिः निद्रा (योग सूत्र)

निद्रा की उत्पत्ति :– अभाव के कारण का आश्रय लेने वाली चित्त वृत्ति का नाम निद्रा है।

यदातुमनसिक्लान्ते कर्मात्मानःल्कमान्विताः।
विषयेभ्योनिवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।। च०सू०11

जब कार्य करते–करते मन एवं इन्द्रियां थक जाते हैं जब इन्द्रियां भी अपने विषयों से निवृत हो जाती है तब मनुष्यों में निद्रा की उत्पत्ति होती है।

निद्रा के प्रकार :– तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवाच मनः शरीर श्रमसम्भवाच।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रि स्वभावाप्रभवाचनिद्रा। च०सू०21

1. तमोभावा तम से उत्पन्न होने वाली।

2. श्लेष्म समुद्भवा– कफ वृद्धि से उत्पन्न होने वाली 3/4. **मन एवं शरीर श्रम सम्भव**– मन एवं शरीर के श्रम से उत्पन्न **5. आगन्तुकी**– मोह, भ्रम एवं नशे आदि के कारण उत्पन्न 6. **व्याध्यनुवर्तिनी**–रोग के कारण उत्पन्न, 7. **रात्रि स्वभाव** – तमो गुणी रात्रि स्वभाव के कारण उत्पन्न नित्य आने वाली निद्रा।

चरक आगे लिखते हैं कि इनमें एक निद्रा नित्य स्वाभाविक रूप से आने वाली होती है तथा प्राणी के अन्त समय में तमोभवा निद्रा आती है। शेष निद्राएं विकार के कारण उत्पन्न होने वाली होती हैं।

सुश्रुत ने :– निद्रां तु वैष्णवी पाप्मा.....भवति। सु०शा०4

1. स्वभाव से उत्पन्न होने वाली पाप्मा या विष्णुमाया।
2. संज्ञावाही स्रोतों में तमोगुण वृद्धिकर उत्पन्न होने वाली तामसी निद्रा है।
3. तमो गुण प्रधान प्राणियों में हर सम आने वाली।
4. रजो गुण प्रधान निद्रा।
5. सत्व गुण प्रधान निद्रा।
6. वैकारिकी निद्रा।

वाग्भट के अनुसार :–

कालस्वभावाऽऽमय चित्तदेह खेदैकफागन्तु तमोभवा च।
निद्राविभर्ति प्रथमाशरीरं पाप्मात्मिका व्याधिनिमितमन्या।। अ०सं०सू०9/68

1. काल स्वभाव, 2. रोग जन्य, 3. खिन्न चित्त जन्य, 4. शरीर पीड़ाजन्य, 5. कफ जन्य 6. आगन्तुकी 7. तमोभवा।

प्रश्न :– निद्रा एवं स्वास्थ्य सम्बन्ध बताइयें?

उत्तर :– यह शरीर त्रिदण्ड रूप है अर्थात् इस जीवित शरीर के तीन आधार स्तम्भ हैं–सत्व (मन), आत्मा एवं शरीर।

सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगातत्र सर्वप्रतिष्ठितम्।। च०सू०1

इन तीनों स्तम्भों को निरन्तर गतिशील रखने एवं इनके पोषण के लिए तीन उपस्तम्भ भी बताये गये हैं जो इनको स्वस्थ रखने एवं इनका समुचित पोषण करने के लिए जीवन भर साथ लगे रहते हैं। इन्हे आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य कहते हैं। व्यवहार में हम देखते हैं कि सड़कों पर लगाये जाने वाले स्तम्भों को आंधी तूफान एवं भूकम्प से बचाने के लिए एक तिरछा खम्भा भी लगाया जाता है। वही उपस्तम्भ है जो उसको बने रहने में सहायता करता है। अत: आहार से शरीर उसकी धातु, दोष एवं स्वरूप को, निद्रा से मन को विश्राम मिलता है तथा ब्रह्मचर्य अर्थात् सदाचार हमारे आचरण एवं अनुशासन द्वारा जीवन से आत्मा का पोषण होता है। इनमें तीनों का ही बहुत महत्व है। प्रतिदिन कार्य करने वाले व्यक्ति को श्रम दूर करने के लिए, पुन: कार्य के लिए तैयार होने के लिए विश्राम रूपी निद्रा की आवश्यकता होती है। यही हमारे मन, आत्मा एवं शरीर को स्वस्थ करती है। सुखमय निद्रा बलपुष्टी, जीवन एवं पोषण प्रदान करने से ही इसे स्वास्थ्य कर कहा है। समुचित निद्रा न आने से अनेक प्रकार के रोग होने से हमारा स्वास्थ्य समुचित नहीं रहता। अत: निद्रा एवं स्वास्थ्य का विशेष सम्बन्ध है।

प्रश्न :- स्वाभाविक निद्रा के लाभ लिखों?

प्रश्न :- सुखमय निद्रा का आहार-विहार से सम्बन्ध लिखें?

उत्तर :- देहवृतौ यथाऽऽहारस्तथास्वप्न: सुखेमत:।
स्वप्नाहारसमुत्थे च स्थौल्यकार्श्य विशेषत:।। च०सू०21/51

जिस प्रकार यथाविधि किया आहार-विहार शरीर पोषण में सहायक होता है उसी प्रकार वह सुखपूर्वक निद्राकर भी होता है।

यदि हमारा आहार समुचित यथा मात्रा एवं आरोग्य कारक नहीं होगा तथा हमारा आचरण, विचार एवं व्यवहार रूप विहार भी उचित नहीं होगा तो निद्रा में बाधक के साथ शरीर के लिए भी हानिकर होगा।

स्वाभाविक निद्रा के लाभ :-

निद्रायत्तं सुखं दु:खं पुष्टि: कार्श्य बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च।। च०सू०21/36

यदि हमारी निद्रा, समय पर एवं समुचित नहीं हो तो सुख-दु:ख पुष्टि, कृशता, निर्बलता, वीर्यवान, नपुंसकता, ज्ञान अज्ञान, जीवन मरण इनमें से दुख कृशता, निर्बलता नपुंसकता, अज्ञान एवं मृत्युकारक होती है। यदि सुखमय निद्रा हो तो सुख, पुष्टि बल ज्ञान एवं जीवन देने वाली होती है।

प्रश्न :- किन व्यक्तियों को दिन में निद्रा नहीं लेनी चाहिए एवं किन्हें रात्रि में कम निद्रा लेनी चाहिए?

उत्तर :- मेदस्विन: स्नेह नित्या:श्लेष्मलाश्लेष्मरोगिण:।
दूषीविषार्ताश्चदिवा न शयीरन् कदाचन।। च०सू०23/45

दिन में न सोना :- मेदस्वी, नित्य स्नेह का सेवन करने वाला कफ प्रधान प्रकृति वाले, दूषीविष से पीड़ित व्यक्ति को दिन में निद्रा नहीं लेनी चाहिए।

रात्रि जागरण हितकर :- कफ मेदो विषार्तानां रात्रौ जागरणं हितम्।। सु०शा०4

कफ से पीड़ित, विष से प्रभावी व्यक्ति के लिए रात्रि जागरण हितकर होता है।

सामान्य व्यक्ति को रात्रि में जागना एवं दिन में नहीं सोना चाहिए। दोनों को दोष कारक समझकर रात्रि में समुचित निद्रा लेनी चाहिए।

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत्।
ज्ञात्वादोषकरवितौ बुध: स्वप्नं मितं चरेत्।। सु०शा०4

समय पर निद्रा न आने एवं निद्रा के समय न नही लेने से अंगों का टूटना, शिर में भारीपन, जड़ता, ग्लानि, चक्कर आना, भोजन का पाचन न होना तथा वात जन्य रोग होने की सम्भावना रहती है।

प्रश्न :- रात्रि जागरण एवं दिवाशयन का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर :- रात्रौजागरणं रूक्ष स्निग्धं प्रस्वप्नं दिव। अ०ह्०सू०7

रात्रि में सोना आवश्यक कर्म है। रात्रि में जागना रूक्षता कारक है। वात व्याधि कारक भी होता है। दिन में सोना स्निग्धता कारक होता है अर्थात् कफ को बढ़ाता है। ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में तृषा, शूल, हिक्का, अजीर्ण रोगी को दिन में निद्रा लेना हितकर है। बाल, वृद्ध, दुर्बल मद्यसेवी, सवारी करके थके हुए, श्रमशील, अजीर्ण वाले व्यक्तियों को दिन में थोड़ी निद्रा लेनी चाहिए।

जिनको रात्रि में जागना पड़ता हो उनको आधे समय दिन में निद्रा लेनी चाहिए।

रात्रिस्वपि जागरितवतां जागरितकालादर्धमिष्यते दिवास्वप्नम्।।सु०शा०4

प्रश्न :- अकाल निद्रा, अतिनिद्रा, स्वरूप एवं निद्रानाश के परिणाम लिखों?

उत्तर :- अकाल में निद्रा, अतिनिद्रा एवं अनिद्रा से आरोग्य एवं जीवन नष्ट होता है। ये सभी काल रात्रि के समान है **कालरात्रिरिवापरा। अ०ह्०**

असमय आने वाली निद्रा :- अकाल या असमय में शयन करने में मोह, ज्वर स्तिमितता (निरूत्साह) पीनस, शिरदर्द, शोफ, जी मिलाना स्रोतोरोध तथा अग्निमांद्य रोग होते हैं।

अतिनिद्रा :- कफवृद्धि के कारण कृशता एवं दौर्बल्य के कारण तथा भारी शरीर वाले मेदस्वी व्यक्तियों को अति निद्रा एवं असमय निद्रा आती है। इसके लिए उपवास, वमन, स्वेदन एवं नस्य प्रयोग करना चाहिए।

निद्रानाश के परिणाम :- निद्रानाशऽङ्गमर्द शिरागौरव जृम्भिका।। अ०ह्०सू०7

निद्रानाश से अंगमर्द, शिर में भारीपन एवं दिनभर जम्भाईयां आती है।

प्रश्न :- व्यवाय के नियमों का वर्णन करों?

उत्तर :- स्त्री के ऋतुमति होने पर सभी प्रसंग करे इसके अतिरिक्त ऋतुओं के अनुसार प्रसंग का उल्लेख करते हुए अ० हृदय में लिखा है-

सेवेत कामता कामं वाजीकृता हिमे।
त्र्यहाद्वसन्तशरदो: पक्षाद्वर्षानिदाधयो:।।

शीतकाल में बाजीकरण औषधियों से तृप्त हुआ मनुष्य इच्छानुसार संयोग सुख का अनुभव करें। वसन्त एवं शरद् ऋतु में तीन दिन छोड़कर तथा वर्षा एवं गर्मी में 15 दिन में एक बार संयोग करना चाहिए सुश्रुत ने भी इस तरह संयोग विषय में लिखा है किन्तु सभी ऋतुओं में 3 दिन बाद तथा केवल ग्रीष्म में 15 दिन बाद संभोग करना चाहिए।

वर्षाषु नवरात्रातु दशरात्राच्छरद्यपि:।
पञ्चाहाच्छीतसमये सप्ताहाच्छिशिरे तथा।।
पक्षाद्वसन्ते ग्रीष्मे तु मासि मासि समाचरेत्।
निदाघे पश्चिमें मासि मैथुनं न समाचरेत्।। भेड़ (भेल संहिता)

नियमित स्त्री प्रसंग से लाभ :- स्त्रियों के विषय में संयमी पुरुष, स्मृति, मेधा, आयु, आरोग्य, पुष्टि, इन्द्रियों की शक्ति, शुक्र, यश तथा बल की प्राप्ति करता है उसे बुढ़ापा देर से आता है।

अनियमित प्रसंग :- दूषित योनि में एवं विपरीत क्रिया प्रसंग करने से रोगों की उत्पत्ति होती है प्राय: भ्रम, क्लम, दुर्बलता, बलक्षय, धातुनाश, इन्द्रिय शक्ति क्षीणता तथा अकाल मृत्यु भी हो सकती है।

अत: स्त्री प्रसंग में संयमी व्यक्ति आयुष्मान, देर से वृद्ध होने वाले, सुन्दर वर्ण, शोभा तथा बल संयुक्त रहता है उसकी मांस पेशियां भी स्थिर होती हैं।